नियमसार, कलश २११।

जयत्यनघमात्मतत्त्वमिदमस्तसन्सारकं,
महामुनिगणाधिनाथहृदयारविन्दस्थितम्।
विमुक्तभवकारणं स्फुटितशुद्धमेकान्ततः,
सदा निजमहिम्नि लीनमपि सद्दृशां गोचरम्।।२११।।

श्लोकार्थ : यह अनघ (निर्दोष) आत्मतत्त्व... अनघ अर्थात् निर्दोष। उसमें कोई पुण्य और पाप या कोई चीज़ है नहीं। उसमें संसार है नहीं। निर्दोष आत्मतत्त्व। अनघ अर्थात् निर्दोष **आत्मतत्त्व जयवन्त है**—वह कायम है। नया होता है, लक्ष्य में लेनेवाले को नया लगता है। वस्तु तो अनादि-अनादि सनातन, नित्यानन्द प्रभु, निर्दोष आत्मतत्त्व पूरा पड़ा है। कि जो **आत्मतत्त्व जयवन्त है—कि जिसने संसार को अस्त किया है,...** आहाहा! यह चैतन्य जो वस्तु, निर्दोष जो आत्मतत्त्व, उसने संसार को अस्त किया है। संसार अस्त हो गया है। स्वयं उगा है, संसार को अस्त कर दिया है। आहाहा! ऐसे आत्मा की दृष्टि करो तो सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा कहना है। आहाहा! धर्म की पहली सीढ़ी।

जिसने संसार को अस्त किया है,... आहाहा! चैतन्यज्योति भगवान आत्मा द्रव्य,

जिसमें संसार का अस्तिपना है ही नहीं। आहाहा! **जो महामुनिगण के...** महामुनिगण के झुण्ड उनके अधिनाथ। महामुनि के झुण्ड-गण, उनके अधिनाथ **(-गणधरों के) हृदयारविन्द में...** आहाहा! गणधर जो गौतम आदि, उनके हृदय में। हृदयारविन्द— हृदयरूपी कमल। उसमें आत्मा स्थित है। आहाहा! इसलिए ऐसा कहना है कि ज्ञान, ज्ञान में स्थित है। ऐसा भगवान आत्मा अन्यत्र कहीं नहीं जाता। आहाहा! वह **हृदयारविन्द में स्थित है,...** आहाहा!

जिसने भव का कारण छोड़ दिया है,... वस्तुस्वरूप ऐसा है कि भव तो नहीं परन्तु भव का कारण जिसने तज दिया है। आहाहा! जिसमें भव तो नहीं क्योंकि भव का कारण जिसमें नहीं। आहाहा! वह तो मोक्ष के कारणरूप पूरा तत्त्व पड़ा है। आहाहा! अब यह बात कैसे जँचे? यह करो... यह करो... ऐसा कहे (तो इसे समझ में आये।) यह कहे भगवान अन्दर पर्याय के अतिरिक्त पूरा तत्त्व जो है, संसार का जिसने अन्त कर दिया है। संसार तो जिसमें अस्त है और भव का कारण। पहले संसार को अस्त किया है, कहा। पश्चात् कहा **भव का कारण छोड़ दिया है,...** क्या कहा यह, समझ में आया? पहले कहा कि भव का ही अभाव किया। स्वरूप में संसार है ही नहीं। दूसरे प्रकार से कहा कि संसार के-भव के जो कारण हैं, वे कारण उसमें नहीं है। कारण तज दिया है। आहाहा! ऐसा मार्ग, लो!

मुमुक्षु : .... है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : .... महावस्तु है। परमपरमात्मा स्वयं है।

अन्दर द्रव्यस्वभाव वस्तु स्वरूप ऐसा है कि उसमें संसार का अस्त है। संसार है ही नहीं। आहाहा! संसार नहीं, उसे अब संसार का नाश करना, यह रहता नहीं। ऐसा कहते हैं। वह तो वस्तु की दृष्टि और अनुभव हुआ तो संसार है ही नहीं। आहाहा! फिर कहा कि गणधरों के हृदय में है। **जिसने भव का कारण छोड़ दिया है,...** आहाहा! स्वर्ग का कारण जो शुभभाव... आहाहा! भव के कारण तज दिये हैं। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भव का कारण है। यह उसने तज दिया है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। अखण्डानन्द प्रभु चैतन्यतत्त्व आत्मतत्त्व है। उसमें कहते हैं कि, आहाहा! **भव का कारण छोड़ दिया है,...** आहाहा! भव का कारण अब छोड़ना नहीं। तज दिया है, उसमें है ही नहीं। आहाहा! वस्तु

है, उसमें अनन्त-अनन्त गुण बसे हुए हैं। उसमें संसार के कारण और संसार दो चीज़ का अभाव है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मतत्त्व, उसकी दृष्टि करना।

जो एकान्त से शुद्ध प्रगट हुआ है... एकान्त से शुद्ध प्रगट हुआ है। **(अर्थात् जो सर्वथा शुद्धरूप से स्पष्ट ज्ञात होता है)...** आहाहा! ऐसी चीज़ है, उसकी अन्दर नजर करने से, पर्याय को उस ओर झुकाने से वह सर्वथा शुद्धरूप से स्पष्ट ज्ञात होता है। सर्वथा शुद्धरूप से प्रत्यक्ष वेदन में आता है। आहाहा! बहुत ऊँचा श्लोक! एक श्लोक में तो... आहाहा! **(अर्थात् जो सर्वथा शुद्धरूप से स्पष्ट ज्ञात होता है)...** है? **एकान्त से शुद्ध प्रगट हुआ है...** इसका अर्थ किया। **एकान्त से शुद्ध प्रगट हुआ है (अर्थात् जो सर्वथा शुद्धरूप से स्पष्ट ज्ञात होता है)...** आहाहा! आनन्द और ज्ञान प्रत्यक्षरूप से ज्ञात होता है। आहाहा! जिसमें संसार और संसार के कारण तो है ही नहीं परन्तु यह वस्तु है, वह स्पष्टरूप से ज्ञात होती है। आहाहा! स्पष्टरूप से वस्तु है। वह प्रत्यक्षरूप से ज्ञात होती है। सर्वथा शुद्धरूप से प्रत्यक्ष ज्ञात होती है। आहाहा! अशुद्धता का तो जिसमें अंश भी नहीं है। ऐसा जो आत्मतत्त्व अन्दर, उसकी दृष्टि करने से, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है, वह धर्म का पहला सोपान है। आहाहा! इस बिना धर्म की शुरुआत है नहीं। बाहर के लाख व्रत और तप और क्रिया किया करे, वह सब संसार में भटकने का (मार्ग है)। आहाहा! **तथा जो सदा (टंकोत्कीर्ण चैतन्यसामान्यरूप)...** एकरूप। जिसका रूप एकरूप है। पर्याय में तो हीनाधिकता होती है। वस्तु है, उसमें हीनाधिकता नहीं है। वह तो सदा एकरूप है। सदा ध्रुव नित्य एकरूप है। आहाहा! **निज महिमा में लीन होने पर भी...** विशिष्टता क्या कही है?—कि शाश्वत सदा चैतन्यसामान्य होने पर भी **सम्यग्दृष्टियों को गोचर है।** आहाहा! संसार की दशा नहीं, संसार के कारण नहीं और स्पष्ट प्रगट ज्ञात होता है। ऐसा सदा टंकोत्कीर्ण अर्थात् शाश्वत् चैतन्यसामान्यरूप ऐसा जो निज महिमा में लीन। वह तो सामान्यस्वरूप ध्रुवस्वरूप, नित्यस्वरूप में वह आत्मा लीन है। आहाहा! ऐसी बात वाड़ा में तो सुनने को मिले, ऐसा नहीं है। वह तो सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो। मिथ्यादृष्टि, मिथ्यात्वसहित संसार में भटकनेवाला है, बापू! अरे रे! जिसमें, जिस तत्त्व में संसार नहीं है, उसे संसार के भाव से लाभ हो... आहाहा! जिसमें संसार के भव के कारण ही नहीं, उसे भव के कारण से लाभ हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। सूक्ष्म लगे, गूढ़ लगे परन्तु वस्तु परम सत्य तो यह है। अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली परमात्मा ऐसा अनादि

काल से कहते आये हैं। अनादि काल से ऐसा कहते आये हैं और अभी भी भगवान ऐसा कहते हैं। आहाहा! और भविष्य में अनन्त तीर्थंकर ऐसा ही कहेंगे। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ'। आहाहा! श्लोक भी कैसा!

निज महिमा में लीन होने पर भी... आहाहा! यह क्या कहते हैं? कि ध्रुव नित्य होने पर भी, सामान्य होने पर भी, ऐसा कहते हैं। सामान्य होने पर भी **निज महिमा में लीन होने पर भी...** अर्थात् सामान्य, सामान्य में ही लीन है। आहाहा! सामान्य, वह सामान्य में ही लीन है। **तथापि सम्यग्दृष्टियों को गोचर है।** आहाहा! क्या कहा समझ में आया? सामान्य, जिसमें संसार नहीं, संसार के कारण नहीं, स्पष्ट प्रगट वस्तु है और (जो)... आहाहा! निज महिमा में सामान्यस्वरूप से (लीन है)। सामान्य अर्थात्? विशेष नहीं। पर्याय की विशेषता उसमें नहीं है। आहाहा! ऐसा जो सामान्य एकरूप तत्त्व **निज महिमा में लीन होने पर भी...** विशिष्टता क्या कहते हैं? कि वस्तु सामान्य है, निज महिमा में लीन है। **तथापि सम्यग्दृष्टियों को गोचर है।** आहाहा!

मुमुक्षु : गोचर होवे तब कही जाए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह गोचर सम्यग्दृष्टि करे, तब उसे खबर पड़े न? इसके बिना ऐसा है, ऐसा जाने कौन? वैसे तो कहा, सामान्य है। अपने स्वरूप में लीन है अर्थात् सामान्य में लीन है। विशेष में नहीं आता। तथापि वह चीज़ सम्यग्दृष्टि को गोचर है। आहाहा! ऐसी बात है। लोगों को फिर लगता है (कि) 'सोनगढ़' की बात एकान्त है। निश्चय-निश्चय की बातें हैं। बापू! निश्चय अर्थात् सत्य। सत्य अर्थात् परम सत्य। वह परम सत्य यह है। आहाहा!

इसमें विशिष्टता क्या की है?—कि संसार और संसार का कारण, उनसे रहित है। बाकी है शुद्धस्वरूप सामान्य। सामान्य में सामान्य लीन है। सामान्य है, वह सामान्य; विशेष बिना, पर्याय बिना, भेद बिना, सामान्य वस्तु वह त्रिकाल सामान्य में लीन है, तथापि सम्यग्दृष्टि को गोचर है। ऐसा यहाँ तक कहा। आहाहा! भले सामान्य, सामान्य में हो परन्तु सम्यग्दृष्टि की पर्याय विशेष है, वह सामान्य को जान लेती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह ऐसी बात है।

सम्यग्दर्शन—प्रथम धर्म का सोपान—धर्म का पहला सोपान। आहाहा! कहते हैं

कि वह भगवान सामान्यस्वरूप है, ध्रुव है और वह ध्रुव में लीन है, तथापि सम्यग्दृष्टि वहाँ दृष्टि करे तो उसे प्राप्त होता है। आहाहा! समझ में आया इसमें? न्याय से, लॉजिक से बात की है। न्याय का मार्ग है, न्याय का अर्थ—नि धातु है। न्याय में नि धातु है। नि धातु का अर्थ ऐसा है, जैसा स्वरूप है, वैसा उस ज्ञान को ले जाना, ले जाना, उसका नाम न्याय है। सज्जनलालजी! तुम्हारे न्याय, वे न्याय नहीं। कोर्ट के न्याय नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : वे लौकिक हैं, यह लोकोत्तर न्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे लौकिक सब झूठे। आहाहा!

क्या बात की? आहाहा! जिसमें—प्रभु में संसार और संसार के कारण नहीं, इसलिए छेदना रहा नहीं। आहाहा! और जो सामान्य अपने स्वरूप में लीन है, वह कैसे जानने में आवे? सामान्य है, वह अपने में लीन है तो भी सम्यग्दृष्टि को जानने में आता है। आहाहा! ऐसा श्लोक है। गजब बात है, एक श्लोक में तो गजब कर दिया। यह तो जिनवाणी है। सन्त, दिगम्बर सन्त अर्थात् वीतराग। दिगम्बर सन्त अर्थात् वीतराग। उन वीतराग की यह वाणी है। आहाहा!

प्रभु! तुझमें राग की गन्ध नहीं न, इसलिए छोड़ना, ऐसा कैसे? कहते हैं। तुझे उस पर लक्ष्य कहाँ करना है? जो नहीं है, उसमें लक्ष्य कहाँ करना है। आहाहा! जिसमें संसार और संसार के कारण नहीं है। नहीं है, उन पर तुझे लक्ष्य कहाँ करना है? आहाहा! और जो है, वह सामान्य में लीन है। इसलिए किसी को ऐसा लगे सामान्य में लीन है, सामान्य विशेष में कैसे ज्ञात हो? तो कहते हैं कि वह सम्यग्दृष्टि जीव अन्तर नजर करने पर उसे सामान्य ध्रुव ज्ञात होता है। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान!

चौरासी के अवतार... आहाहा! कल नहीं कहा था? ६६३३६ (भव) एक अन्तर्मुहूर्त में निगोद के भव करे। जन्मे और मरे... जन्मे और मरे... जन्मे और मरे। अन्तर्मुहूर्त अर्थात् ४८ मिनिट। आहाहा! ४८ मिनिट में इस काई में और इस लहसुन में और प्याज में और कान्दा में, मूला का कान्दा, उसमें पत्ते नहीं। पत्ते प्रत्येक हैं। एक कान्दा है, उसके एक टुकड़े में अनन्त जीव हैं। आहाहा! कहते हैं कि ऐसे जो जीव हैं... आहाहा! वे अन्दर जीव हैं, वे पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन हैं, तथापि भूलकर एक अन्तर्मुहूर्त में ६६ हजार भव करते हैं। अरर्र! यह जन्म-मरण के दुःख, बापू! कैसे होंगे? आहाहा!

यहाँ माता के गर्भ में से निकले तो दबाव होकर पेट दु:खे। महापीड़ा हो। जन्म के समय महापीड़ा होती है और जन्मने के बाद सीधे पहले ऊंहकारा करे। आँख उघाड़े नहीं। जन्मा तो बालक ऊंहकारा ऊं... करे। आँख उघाड़े नहीं। फिर उसकी माँ आकर देखे कि यह लड़का है या .... फिर और उसे पम्पाले और ऐसे करे, फिर ऊंहकारा करे, ऐसे-ऐसे किया करे। आहाहा! मनुष्य भव में यह तो साधारण दु:ख है। यह तो साधारण है और निगोद में तो अनन्त दु:ख है। जिसे पर्याय में अक्षर में अनन्तवें भाग का विकास है। आहाहा!

जो ज्ञानमूर्ति प्रभु भवसागररहितस्वरूप, परन्तु उसकी पर्याय में, विकास में... विकास में तो अक्षर के अनन्तवें भाग का विकास है। बाकी उसका स्वरूप पूर्ण है, वह पूर्ण भवरहित है। आहाहा! उसमें ६६ हजार भव। अन्तर्मुहूर्त में क्या होगा यह ? आहाहा! अन्तर्मुहूर्त में ६६३३६। आहाहा! एक बार तो अन्दर चोट लगनी चाहिए न! हृदय में चोट लगनी चाहिए कि आहाहा! ऐसे भव, प्रभु! तूने किये और जब तक अभी मिथ्यात्व नहीं टालेगा, तब तक भवभ्रमण करेगा। आहाहा!

इसलिए यहाँ कहते हैं कि यह मिथ्यात्व-फिथ्यात्व तुझमें नहीं है। सुन न! आहाहा! मिथ्यात्व, वह संसार का कारण है। वह कारण तुझमें नहीं है। वह तो पर्याय में है। आहाहा! और यह सामान्यस्वरूप है और एकरूप है। एकरूप ख्याल में कैसे आवे ? ऐसा कहते हैं। जो सामान्य है, ध्रुव है, एकरूप है, सदा नित्य शाश्वत है, वह अनुभव में कैसे आवे ? वह सम्यग्दृष्टि के अनुभव में आता है। आहाहा! भाषा तो सादी समझ में आये ऐसी है। नहीं समझ में आये ऐसा नहीं है। परन्तु वस्तु कड़क है, बापू! आहाहा! धर्म कोई ऐसा वीतराग है। वीतराग के अतिरिक्त कहीं धर्म है भी नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप का कथन भी कहाँ है ? दया पालो, व्रत करो, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, जीविया, वहरोविया तस्स मिच्छामी दुक्कडम। कायोत्सर्ग करो। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कायोत्सर्ग तो अपने आ गया।

आत्मा आनन्दमूर्ति पूर्णानन्द नित्यानन्द में काया का उत्सर्ग ही है। इस शरीर से लेकर सभी चीज़ों का प्रभु में अभाव ही है। इसलिए उन्हें छोड़ना, वह कुछ है नहीं।

आहाहा! वह वस्तु है, उसमें स्थिर होना। ध्रुव है, उसमें स्थिर होना। सामान्य है, उसमें विशेषरूप से रहना-होना। आहाहा! सामान्य वस्तु त्रिकाल एकरूप होने पर भी सम्यग्दृष्टि की पर्याय विशेष, वह विशेष उसे जान लेता है। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दृष्टियों को गोचर है। एक वचन नहीं लिया। सम्यग्दृष्टियों को (अर्थात्) बहुत से सम्यग्दृष्टि जीव हैं, उन्हें वह गम्य है। आहाहा! ऐसी चीज़ है। धीरे से वस्तु का स्वरूप क्या है, (उसे समझना चाहिए)। सर्वज्ञ परमात्मा इन्द्र की उपस्थिति में गणधरों की हाजरी में जो वाणी निकली, वह यह वाणी है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे। संवत् ४९ में। आठ दिन रहे थे। वहाँ से आये और फिर इस शास्त्र में तो ऐसा कहा कि मैंने मेरी भावना के लिये यह शास्त्र बनाया है। आहाहा! समयसार और प्रवचनसार में दूसरे प्रकार से कहा। वहाँ तो यह मैं कहूँगा और वर्णन करूँगा ऐसा (कहा) और इसमें तो ऐसा कहा कि मैंने मेरी भावना... अन्तिम गाथा है न? मेरी भावना के लिये मैंने तो यह बनाया है। अन्तिम है। १८७ अन्तिम गाथा। आहाहा! १८७।

'**णियभावणाणिमित्तं**' १८७। गुजराती में पृष्ठ ३७१ '**णियभावणाणिमित्तं**' मेरी भावना के कारण से आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। मेरी भावना के कारण से '**मए कदं**' मैंने किया है। '**णियमसारणामसुदं**' नियमसार नामक सूत्र '**णच्चा जिणोवदेसं**' वीतराग के उपदेश को पूर्वापर अविरोध जानकर। आहाहा! वीतराग त्रिलोकनाथ केवली परमात्मा की वाणी को पूर्वापर विरोधरहित जानकर '**णच्चा**' अर्थात् जानकर। जिनोपदेश '**पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं**' पहले और बाद में कहीं विरोध नहीं। पहले कुछ कहे और पश्चात् कुछ कहे (ऐसा नहीं)। **दोष रहित...** दोष का विरह है। दोष उसमें है नहीं। '**पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं**' आहाहा! स्वयं कहते हैं कि मैंने मेरे लिये बनाया है, लो! आहाहा! मुझे तो ऐसा कहना है, कुन्दकुन्दाचार्य जैसे एक भव में मोक्ष जानेवाले, भगवान के पास गये, आठ दिन वहाँ रहे। वे ऐसा कहते हैं। मैंने मेरे लिये नियमसार बनाया है, बापू! आहाहा! मैंने तो मेरी भावना के लिये... आहाहा! अनन्त आनन्द का नाथ, उसकी भावना, उसका अनुभव, उसकी पर्याय में, उसका सब सर्वस्व आवे, उसकी पर्याय में अन्दर सर्वस्व आवे, इसके लिये मैंने बनाया है। आहाहा!

गाथा-१२७

जस्स सण्णिहिदो अप्पा संजमे णियमे तवे।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे।।१२७।।

यस्य सन्निहितः आत्मा संयमे नियमे तपसि।
तस्य सामायिकं स्थायि इति केवलि-शासने।।१२७।।

अत्राप्यात्मैवोपादेय इत्युक्तः। यस्य खलु बाह्यप्रपञ्चपराङ्मुखस्य निर्जिताखिलेन्द्रिय-व्यापारस्य भाविजिनस्य पापक्रियानिवृत्तिरूपे बाह्यसंयमे कायवाङ्मनोगुप्तिरूपसकलेन्द्रिय-व्यापारवर्जितेऽभ्यन्तरात्मनि परिमितकालाचरणमात्रे नियमे परमब्रह्मचिन्मयनियतनिश्चयान्त-र्गताचारे स्वरूपेऽविचलस्थितिरूपे व्यवहारप्रपञ्चितपञ्चाचारे पञ्चमगतिहेतुभूते किञ्चनभाव-प्रपञ्चपरिहीणे सकलदुराचारनिवृत्तिकारणे परमतपश्चरणे च परमगुरुप्रसादासादितनिरञ्जन-निजकारणपरमात्मा सदा सन्निहित इति केवलिनां शासने तस्य परद्रव्यपराङ्मुखस्य परमवीतराग-सम्यग्दृष्टेर्वीतरागचारित्रभाजः सामायिकव्रतं स्थायि भवतीति।

संयम-नियम-तप में अहो! आत्मा समीप जिसे रहे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१२७॥

अन्वयार्थ : [यस्य] जिसे [संयमे] संयम में, [नियमे] नियम में और [तपसि] तप में [आत्मा] आत्मा [सन्निहितः] समीप है, [तस्य] उसे [सामायिकं] सामायिक [स्थायि] स्थायी है [इति केवलिशासने] ऐसा केवली के शासन में कहा है।

टीका : यहाँ (इस गाथा में) भी आत्मा ही उपादेय है, ऐसा कहा है।

बाह्य प्रपंच से पराङ्मुख और समस्त इन्द्रिय व्यापार को जीते हुए ऐसे जिस भावी जिनको पापक्रिया की निवृत्तिरूप बाह्यसंयम में, काय-वचन-मनोगुप्तिरूप, समस्त इन्द्रियव्यापार रहित अभ्यन्तर संयम में, मात्र परिमित (मर्यादित) काल के आचरणस्वरूप नियम में, निजस्वरूप में अविचल स्थितिरूप, चिन्मय-परमब्रह्म में

नियत (निश्चल रहे हुए) ऐसे निश्चय अन्तर्गत-आचार में (अर्थात् निश्चय-अभ्यन्तरचारित्र में), व्यवहार से *प्रपंचित (ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्याचाररूप) पंचाचार में (अर्थात् व्यवहार-चारित्र में), तथा पंचम गति के हेतुभूत, किंचित् भी परिग्रहप्रपंच से सर्वथा रहित, सकल दुराचार की निवृत्ति के कारणभूत ऐसे परम तपश्चरण में (इन सबमें) परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त किया हुआ निरंजन निज कारणपरमात्मा सदा समीप है (अर्थात् जिस मुनि को संयम में, नियम में, चारित्र में और तप में निज कारणपरमात्मा सदा निकट है), उस परद्रव्यपराङ्मुख परम वीतराग-सम्यग्दृष्टि वीतराग-चारित्रवन्त को सामायिक व्रत स्थायी है, ऐसा केवलियों के शासन में कहा है।

गाथा - १२७ पर प्रवचन

१२७ गाथा।

जस्स सण्णिहिदो अप्पा संजमे णियमे तवे।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे।।१२७।।

संयम-नियम-तप में अहो! आत्मा समीप जिसे रहे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१२७॥

आहाहा! अलौकिक बातें हैं।

टीका : यहाँ (इस गाथा में) भी आत्मा ही उपादेय है, ऐसा कहा है। आत्मा ही उपादेय है। पर्याय नहीं, व्यवहार नहीं, निमित्त नहीं, कुछ नहीं। आहाहा! यह आत्मा उपादेय है, यही सम्यग्दर्शन है। आहाहा! **(इस गाथा में) भी आत्मा ही उपादेय है, ऐसा कहा है।**

बाह्य प्रपंच से पराङ्मुख... आहाहा! **और समस्त इन्द्रिय व्यापार को जीते हुए...** समस्त इन्द्रिय विषय को जीते हुए **ऐसे जिस भावी जिन को...** आहाहा! भविष्य में तीर्थंकर होनेयोग्य। आहाहा! भावी जिन। कलश में भी फिर आता है। भाई! भावी

* *प्रपंचित=दर्शाये गये; विस्तार को प्राप्त।*

तीर्थाधिनाथ। फिर २१२ वाँ कलश आता है न? उसमें अन्त में शब्द है भावी तीर्थाधिनाथ। ध्वनि तो ऐसी उठती हो मानो कि ये भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले होंगे। ऐसी ध्वनि उठती है। एक भक्तामर ऐसी ध्वनि आती है। भक्तामर है, उसमें ऐसी ध्वनि आती है। मानो भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले हों। आहाहा!

ऐसे जिस भावी जिन को... भविष्य में परमात्मा होनेवाले, भविष्य में केवलज्ञान होनेवाला है, ऐसे जिन को। **पापक्रिया की निवृत्तिरूप बाह्यसंयम में,...** पापक्रिया की निवृत्तिरूप बाह्यसंयम होने पर भी अन्दर आत्मा समीप है। वह क्रिया समीप नहीं है। आत्मा आनन्दस्वरूप है, वह समीप में वर्तता है। आहाहा! **पापक्रिया की निवृत्तिरूप बाह्यसंयम में, काय-वचन-मनोगुप्तिरूप,...** उसके वचन में भी **समस्त इन्द्रियव्यापार रहित अभ्यन्तर संयम में,...** आहाहा! अन्तर के अभ्यन्तर संयम में। आनन्दस्वरूप में सम्यक्प्रकार से यम, संयम। यम अर्थात् लीनता होना। आहाहा! ऐसे संयम में भी। **मात्र परिमित (मर्यादित) काल के आचरणस्वरूप नियम में,...** आहाहा! भले मुनि कोई परिमित करे। दोपहर में आहार करे, प्रत्याख्यान करे,... ऐसे मर्यादित काल के आचरण नियम में। **निजस्वरूप में अविचल स्थितिरूप,...** आहाहा! उस प्रत्येक में भी **निजस्वरूप में अविचल स्थितिरूप,...** आहाहा! उस क्रिया के काल में भी निजस्वरूप में स्थितिरूप। आहाहा!

चिन्मय-परमब्रह्म में नियत... ज्ञानमय ऐसा जो परमब्रह्म भगवान, उसने **(निश्चल रहे हुए)...** आहाहा! **ऐसे निश्चय अन्तर्गत-आचार में...** वह बाहर का लिया था। यह अन्दर का लिया। **ऐसे निश्चय अन्तर्गत-आचार में (अर्थात् निश्चय-अभ्यन्तरचारित्र में),...** आत्मा बसता है, ऐसा कहना है। आत्मा समीप है। सबमें नजदीक है। सामने विद्यमान है। आहाहा! चाहे जो क्रिया होती हो, तथापि भगवान तो ऐसे समीप में पड़ा है। नजरें वहाँ नहीं है। नजरें यहाँ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह बाह्य क्रिया या अभ्यन्तर क्रिया, उस पर नजर नहीं है। वह वर्तती है परन्तु उनमें प्रभु समीप वर्तता है। अपना आत्मा भगवान सामान्य ध्रुवस्वरूप समीप में, प्रत्येक में समीप में वर्तता है। आहाहा! ऐसा उपदेश है, लो!

व्यवहार से प्रपंचित... आहाहा! व्यवहार से जो वर्णित **(ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्याचाररूप)...** आहाहा! व्यवहार। व्यवहार से वर्णन होवे न! ज्ञान का, दर्शन का, चारित्र का, ऐसे पंचाचार में... आहाहा! भी भगवान समीप वर्तता है, कहते हैं। पंचाचार

है, वह तो विकल्प है परन्तु उसके समीप में प्रभु वर्तता है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को ऐसी क्रिया के समय के काल में भी दृष्टि में वह प्रभु तैरता है। दृष्टि में वह क्रिया नहीं तैरती। आहाहा! वह क्रिया आदि को जाने, परन्तु समीप में वर्तनेवाला प्रभु, उस पर उसकी दृष्टि है। आहाहा! **व्यवहार से प्रपंचित (ज्ञान-दर्शन)...** प्रपंचित, देखा! **दर्शाये गये; विस्तार को प्राप्त।** ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, वीर्याचार, तपाचार। आहाहा!

तथा पंचम गति के हेतुभूत, किंचित् भी परिग्रहप्रपंच से सर्वथा रहित,... पंचम गति के हेतुभूत, कुछ भी परिग्रह प्रपंच से सर्वथा रहित। आहाहा! एक वस्त्र का टुकड़ा भी मुनि को नहीं होता। वस्त्र का टुकड़ा रखकर मुनि माने तो निगोद में जानेवाला है। आहाहा! अष्टपाहुड़ में यह पाठ है। यह तो वस्त्र के ढ़ेर रखे। चले, बड़े टोकरा बाँधे। हम निर्ग्रंथ हैं, हम मुनि हैं (ऐसा माने)। बहुत अन्तर, भगवान! बहुत अन्तर। आहाहा! सूत्रपाहुड़ की १८वीं गाथा में ऐसा कहते हैं, एक वस्त्र का टुकड़ा भी रखकर मुनिपना माने, मनावे, वह निगोद में जाएगा।

मुमुक्षु : तिल के तुष जितना, तिल-तुष...

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य बात है। तिल-तुष मात्र छिलका रखे तो भी ऐसा है। तिल-तुष का छिलका जितना भी रखे... आहाहा! समझ में आया?

यह सूत्रपाहुड़ में है। मोक्षपाहुड़ में तो '**परदव्वादो दुग्गई**' है। परद्रव्य से तो दुर्गति होगी। वीतराग कहते हैं कि तू मेरे सन्मुख देखेगा तो तुझे राग होगा, विकार होगा, दुर्गति होगी। आहाहा! यह तो वीतराग ऐसा कहते हैं। वह सूत्रपाहुड़ में है। मोक्षपाहुड़ में यह है। सूत्रपाहुड़ की १८वीं गाथा। '**जहजायरूवसरिसो**' माता ने जन्म दिया, उससे विशेष '**तिलतुसमेत्तं**' तिल के तुषमात्र '**ण गिण्हदि हत्थेसु**' जो वस्त्र का टुकड़ा हाथ से ग्रहण करे '**जइ लेइ अप्पबहुयं,**' थोड़ा या बहुत ग्रहण करे। '**तत्तो पुण जाइ णिग्गोदम्**' आहाहा! वह वस्त्र रखकर मुनिपना माने, मनावे और माननेवाले को भला जाने, वे सब निगोदगामी हैं। गजब बात है। है? सूत्रपाहुड़ की १८वीं गाथा। '**तिलतुसमेत्तं ण गिण्हदि**' तिल के छिलके जितना भी ग्रहण नहीं करता। यदि ग्रहण करे तो निगोद में जाएगा। मुनिपना किसे कहें? आहाहा! अलौकिक दशा है!

पंचम गति के हेतुभूत, किंचित् भी परिग्रहप्रपंच से सर्वथा रहित, सकल

दुराचार की निवृत्ति के कारणभूत ऐसे परम तपश्चरण में... आहाहा! आत्मा के आनन्द का उग्रपना प्रगट होना, वह तपस्या है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में रमना, वह चारित्र और उसमें से उग्र पुरुषार्थ करना, उसका नाम तप। यह सब तप करते हैं, वह तो सब लंघन है। उसमें से भटकने का संसार बढ़ेगा। आहाहा! बहुत दुनिया से पूरा अन्तर है। **दुराचार की निवृत्ति के कारणभूत ऐसे परम तपश्चरण में (इन सबमें) परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त किया हुआ...** आहाहा! इतना रखा। परम गुरु ने कहा हुआ इसके अतिरिक्त कोई इस वस्तु को कह नहीं सकता। आहाहा!

परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त किया हुआ... इतना निमित्त रखा। उनसे मिला। उन्होंने कहा है कि यह, यह आत्मा। ध्रुव वह आत्मा, वहाँ ध्यान (दे)। वापस परम गुरु लिये हैं। अकेले अज्ञानी गुरु नहीं। आहाहा! **परम गुरु के प्रसाद से...** उनके प्रसाद से कहा। देखा? आहाहा! यह तो पाँचवीं गाथा में कहा। चार बोल- आगम सेवा से, गुरु सेवा से... चार बोल कहे हैं। निमित्त से कथन करे न! ऐसी बात सुनानेवाले कौन होते हैं? वे परम गुरु सन्त होते हैं। नग्नदिगम्बर मुनि, वे ऐसी बात सुनाने के योग्य हैं। आहाहा! उनके पास से ऐसा सुनने को मिलता है। आहाहा! वस्त्र का पोटला रखे, उनके पास से सुनने का नहीं मिलता। विपरीत सुनने को मिलता है। आहाहा!

मुमुक्षु : वस्त्र तो परद्रव्य है, वह क्या हैरान करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : हैरान वस्त्र कहाँ करता है? वस्त्र के प्रति ममत्वभाव, वह हैरान करता है। वस्त्र तो जड़ है, जड़ तो आत्मा को स्पर्श भी नहीं करता। परन्तु वह वस्त्र मेरा है, ऐसा करके ओढ़े और रखे, वह निगोद में जाएगा। लहसुन और प्याज में अवतरित होंगे। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य की शिक्षा बड़ी।

पूज्य गुरुदेवश्री : शिक्षा बड़ी नहीं। जैसा स्वरूप है, वैसा कहा है। शिक्षा बड़ी तो अधिकपना कहा। यह (तो) जैसा है, वैसा कहा। क्यों? - कि वस्त्र का एक टुकड़ा भी रखे तो नवतत्त्व की भूल होती है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! एक तो जीव की, मुनि की जो दशा है, उस दशा में वस्त्र का राग नहीं होता। वस्त्र लेने का राग नहीं होता। उसे राग का ज्ञान नहीं है तथा वस्त्र का संयोग उसे नहीं होता। तो संयोग - उस अजीव का ज्ञान नहीं है।

उस समय संवर की दशा, राग और वस्त्र से राग आया, उसमें जो संवर की दशा चाहिए, वह नहीं है। वह संवर दशा की भूल है, निर्जरातत्त्व की भूल है। नवतत्त्व की भूल है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! यह बात तो बहुत बार कही जा चुकी है।

वस्तुस्वरूप है, उससे वस्त्र का टुकड़ा मुनि की दशा, उस टुकड़े की जो ममता है, वह राग है, उसे मुनिपना नहीं होता, तथापि वह राग है और मुनिपना मनाता है; और संयोग भी उसे ऐसा नहीं होता। राग होता नहीं तो वस्त्र का संयोग भी नहीं होता, तथापि संयोग के पोटला रखे और मुनिपना मनावे। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई, और जीव की दशा जितनी चाहिए, उतनी उसमें नहीं है, तथापि वह मुनिपने की दशा मानता है। संवर-निर्जरा की भूल है, पुण्य-पाप की भूल है। अजीव की भूल है। अजीव इतना संयोग नहीं होता, मुनि को अजीव का, वस्त्र का संयोग नहीं होता, उसे संयोग मानता है, वह अजीवतत्त्व की भूल है। आहाहा! वाड़ावालों को तो कठिन लगे ऐसा है। स्थानकवासी और श्वेताम्बर दोनों... यहाँ तो वस्त्र रखे, वह निगोदगामी है, ऐसा कहा है। आहाहा! कठिन पड़े, बापू! क्या हो? वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की वाणी है, वह दिव्यध्वनि है। किसी ने सुनी न हो, इसलिए ऐसा लगता है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्थविरकल्पी और जिनकल्पी के भेद किसलिए कहे?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भेद... यह विकल्प। जिनकल्पी अकेले रहते हैं, स्थविरकल्पी साधुओं के साथ रहते हैं इसलिए। बस, दूसरा कोई नग्नपने में दूसरे में कुछ अन्तर नहीं है। जिनकल्पी अकेले जंगल में रहते हैं और स्थविरकल्पी हैं, वे साधुओं के साथ रहते हैं। नग्नपना दिगम्बर मुनि। एक वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं, पात्र का टुकड़ा नहीं। वस्त्र और पात्र दोनों नहीं। आहाहा! एक मोरपिच्छी और कमण्डल होता है। आहाहा! ऐसी मुनि की दशा, उससे विपरीत माने तो मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व है, वह निगोद में जानेवाले हैं। आहाहा! यहाँ तो स्पष्ट रीति से बात रखी है, कहीं गुप्त नहीं रखी। शास्त्र में पाठ है। बताया न? सूत्र में-सूत्रपाहुड़ की १८वीं गाथा। आहाहा! अभी तो वाड़ा में कौन सा वाड़ा सच्चा, इसकी भी खबर नहीं, (तो) उसे अन्दर तत्त्व क्या है, इसकी तो खबर ही कहाँ है? आहाहा!

परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त किया हुआ... अर्थात् क्या कहते हैं? परम गुरु ऐसा कहते हैं कि संसार तुझमें नहीं है; क्रियाकाण्ड, वह तुझमें नहीं है; तू उससे अत्यन्त भिन्न

है। व्यवहार के जितने आचार हैं, वे भी तुझमें नहीं हैं। आहाहा! ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार (तपाचार, वीर्याचार) **सकल दुराचार की निवृत्ति के कारणभूत...** ओहोहो! यह शुभभाव भी दुराचार की निवृत्ति है। आहाहा! शुभभाव, अशुभभाव दोनों एक जाति है। दोनों जहर है, दोनों बन्ध के कारण हैं। आहाहा! **ऐसे परम तपश्चरण में (इन सबमें) परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त किया हुआ...** ऐसी सब जो क्रिया कही, उसमें **निरंजन निज कारणपरमात्मा सदा समीप है...** इस क्रिया के विकल्प के समय भी भगवान अन्दर शुद्ध चैतन्य निर्मलानन्द नजदीक (वर्तता है)। वहाँ दृष्टि है। आहाहा!

तब पात्र रखकर साधुपना माने, वे सब खोटे? वस्त्र और पात्र। आहाहा! खोटे वे खोटे कैसे? मिथ्यादृष्टि। मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। उन्हें दुःख हो, वह कहीं कोई चाहेगा? परन्तु विपरीत मान्यता का फल दुःख है, बापू! विपरीत मान्यता का फल नरक और निगोद है। वह कोई नरक और निगोद में जाए, यह कहीं ज्ञानी चाहेगा? सब आत्मा भगवान होओ। आहाहा! अपवित्रता छोड़ दो। पवित्र प्रभु है, उसे ग्रहण कर लो। सब परमात्मा होओ। ज्ञानी तो अवाय में ऐसा विचार करता है। आहाहा! ऐसा नहीं कि यह मेरा विरोधी है, वह नरक में जाओ, निगोद में जाओ। आहाहा! यह तो स्वरूप बतलाया है कि ऐसा भाव होवे, वह ऐसा होगा परन्तु सब आत्मा पवित्र होओ और अपवित्रता की झूठी बात छोड़ दो। आहाहा! कठिन पड़ता है।

ऊपर यह जो सब बात की न ऊपर? कि एक तो प्रपंच से पराङ्मुख, इन्द्रिय व्यापार का विजेता, भावी जिन को पापक्रिया की बाह्य संयम, उसमें भी आत्मा है, ऐसा कहा। उसके समीप में आत्मा वर्तता है। **काय-वचन-मनोगुप्तिरूप, समस्त इन्द्रियव्यापार रहित अभ्यन्तर संयम में,...** आत्मा नजदीक वर्तता है। **मात्र परिणमित (मर्यादित) काल के आचरण...** दो घड़ी, दो-चार दिन अमुक नहीं खाना, ऐसी प्रतिज्ञा हो, उसमें भी आत्मा नजदीक होना चाहिए। आहाहा! **निजस्वरूप में अविचल स्थितिरूप,...** उसमें भी आत्मा। **चिन्मय-परमब्रह्म में नियत (निश्चल रहे हुए)...** ज्ञानमय परमब्रह्म में नियत **ऐसे निश्चय अन्तर्गत-आचार में (अर्थात् निश्चय-अभ्यन्तरचारित्र में),...** भी भगवान आत्मा नजदीक और **व्यवहार से प्रपंचित...** में भी भगवान आत्मा नजदीक है। आहाहा! व्यवहार होता अवश्य है परन्तु निश्चय में, ज्ञानानन्द में उसका आदर होता है, व्यवहार का आदर नहीं होता। आहाहा!

यह सब जो बात की, उसमें परमात्मा नजदीक वर्तता है अर्थात् प्रत्येक समय में जो क्रिया होती है, उसमें आत्मा पर नजर है, आत्मा पर नजर और आत्मा समीप है। वह क्रिया समीप नहीं है। आहाहा! और परम गुरु ने कहा हुआ यह। आहाहा! जैन परमेश्वर के पन्थ के जो गुरु, उन गुरु के प्रसाद से प्राप्त किये हुए। दूसरे गुरु जो कुछ का कुछ कुगुरु ने कहा हो, उससे तो अज्ञान मिलता है। आहाहा!

परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त किया हुआ निरंजन निज कारणपरमात्मा... आहाहा! **सदा समीप है...** यह लेना है। यह सब जितने कहे, उन सबमें भगवान आत्मा मुख्य है। आनन्दकन्द प्रभु मुख्य है। यह राग भले हो। पंचाचार का राग हो या निवृत्ति का हो, तथापि अन्दर भगवान शुद्ध चैतन्य है, वह उसमें समीप में है। वहाँ उसका आदर है। वह क्रिया आदि का आदर नहीं है। व्यवहार बीच में आता है। पूर्ण वीतराग न हो, उसे व्यवहार-राग आता है, परन्तु उसका आदर नहीं है। आदर तो भगवान त्रिलोकनाथ चैतन्यमूर्ति आनन्दघन का आदर है। आहाहा! ऐसा उपदेश किस प्रकार का? एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया तो कुछ आता नहीं। तत्सूत्री करणेन अप्पाण वोसरे। लोगस्स में विहुयरयमला। अरे! प्रभु! वह तो सब पाप है। वह पाप सब राग का कारण है। आहाहा!

यह कहा न? पाठ भी कहाँ सरीखा है? लींबड़ी में सेठिया का बड़ा उपाश्रय है और विसाश्रीमाली का यहाँ संघवी का। संघवी का उपाश्रय। दशा और विसा दोनों को विरोध चलता है। उसमें दशाश्रीमाली की महिला सामायिक करती थी। पढ़ती थी पहाड़े आदि (प्रतिक्रमण के पाठ आदि)। उसमें यह पाठ आया, उसमें विहा रोई मल्या, ऐसा बोली। लोगस्स में आया वहाँ उसमें विहा रोई मल्या। वह कहे परन्तु अपना यहाँ कहाँ आया इसमें? अपना विवाद लोगस्स में कहाँ आया? लोगस्स में है विहुईरयिमला। विशेष, हुई-टाला है कर्मरूपी रज और रागरूपी मैल। वह विहुईरयिमला का अर्थ है। वह वृद्धा सामायिक में बोली, विहा रोई मल्या। आहाहा! ऐसा! अर..र..र..! गजब है न कोई! ऐसा ही चलता है ऐसी की ऐसी पोल। और णमोत्थुणं में आता है दीवोताणम, सरणगईपईट्ठा। णमोत्थुणम अरिहंताणं में। उसमें वह महिला बोली णमोत्थुणम्, दीवा टाणे संघवी पिट्या। दिवो ताणम सरणगईपईट्ठा। आहाहा! अरे रे! इतने अर्थ की खबर नहीं होती। अब उसे यह आत्मा ऐसा और यह आत्मा ऐसा किस प्रकार जँचे?

(अर्थात् जिस मुनि को संयम में, नियम में, चारित्र में और तप में निज कारणपरमात्मा सदा निकट है), उस परद्रव्यपराङ्मुख... मुनि परद्रव्य से पराङ्मुख है। यह रागादि सब परद्रव्य है। **परम वीतराग-सम्यग्दृष्टि...** परम वीतराग-सम्यग्दृष्टि मुनि... आहाहा! **वीतराग-चारित्रवन्त को...** ऐसे वीतराग-चारित्रवन्त को, **सामायिक व्रत स्थायी है,...** नित्य है, वह सच्चा है, **ऐसा केवलियों के शासन में कहा है।** भगवान केवली तीर्थंकर के शास्त्र में ऐसा कहा है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)